विपश्यना

साधकों का मासिक प्रेरणा पत्र

बुद्धवर्ष २५४९, कार्तिक पूर्णिमा, १५ नवंबर, २००५ वर्ष ३५ अंक ५

धम्मवाणी

एतञ्हि तुम्हे पटिपन्ना, दुक्खस्सन्तं करिस्सथ।
अक्खातो वो मया मग्गो, अञ्ञाय सल्लकन्तनं॥
धम्मपद- २७५, मग्गवग्गो

इस (मार्ग) पर आरूढ़ होकर तुम दुःख का अंत करोगे। मेरे द्वारा शल्य काटनेवाले इस मार्ग को स्वयं जान कर तुम्हारे लिए आख्यान किया गया है।

विपश्यना एवं आयुर्वेद सम्भाषा-परिषद् के उद्घाटन अवसर पर पूज्य गुरुजी का प्रवचन

१५ अक्तूबर, २००५, जीवक हाल, विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी

भारत के प्रबुद्ध और प्रसिद्ध चिकित्सको!
और धार्मिक चिकित्सा के प्रेमी सज्जनो, सन्नारियो!

आज इस ऐतिहासिक संगोष्ठी का महत्त्वपूर्ण आयोजन किया जा रहा है। बड़ी प्रसन्नता की बात है। भगवान बुद्ध एक महान चिकित्सक थे, महाभिषक कहलाते थे। **'सल्लकत्तो'** – शल्यकर्ता, माने सर्जन कहलाते थे। किसी भी समझदार, अनुभवी चिकित्सक के लिए कुछ एक महत्त्वपूर्ण बातों का पालन करना आवश्यक होता है।

एक अच्छे चिकित्सक के मन में किसी रोगी के प्रति करुणा जागती है। यह रोगी है, मेरे पास आया है, मुझे इसका रोग दूर करना है। वह इस बात को नहीं देखता कि जिस रोगी की चिकित्सा करनी है, वह किस जाति का है, किस गोत्र का है, किस वर्ण का है, किस संप्रदाय का है, कैसी दार्शनिक मान्यता मानने वाला है, किस देश का है, किस रंग-रूप का है; पुरुष है या नारी है; कुछ नहीं देखता, सिवाय इसके कि यह एक मनुष्य है और रोगी है। यदि किसी प्रकार का भेदभाव करने लगा तो समझो कि कुशल चिकित्सक नहीं है। अपने उत्तरदायित्व को भलीभांति समझने वाला चिकित्सक नहीं है।

उसके सामने एक मात्र लक्ष्य है कि यह मनुष्य है और रोगी है। पुरुष है कि नारी है, रोगी है और मेरे पास इसका रोग दूर करने की चिकित्सा है। तो बड़े प्यार से, बड़ी मैत्री से, बड़ी करुणा से, बड़ी सद्भावना से; एक ही लक्ष्य कि इस व्यक्ति को रोगमुक्त करना है। हर समझदार चिकित्सक के लिए यह मूलभूत भावना होनी अत्यंत आवश्यक है।

जब कोई रोगी आता है तो वह भी यह प्रश्न नहीं करता कि वैद्यजी आप किस जाति के हैं, किस वर्ण के हैं, किस गोत्र के हैं, किस संप्रदाय के हैं, कैसी दार्शनिक मान्यता माननेवाले हैं? ये सारी अप्रासंगिक बातें हैं।

जिन बातों का उस रोग से कोई लेनदेन नहीं, जिन बातों का उस रोग के कारण से कोई लेनदेन नहीं, जिन बातों का उस रोग के कारण के निवारण से कोई लेनदेन नहीं, जिन बातों का उस रोग को दूर करने के उपाय से, औषधि से कोई लेनदेन नहीं; वे सारी बातें निरर्थक हैं, अप्रासंगिक हैं। एक कुशल चिकित्सक ऐसी निकम्मी बातों में अपना समय नहीं खराब करता। भगवान बुद्ध ने भी यही किया।

सिद्धार्थ गौतम ने घर त्याग कर के छः वर्षों तक बहुत परिश्रम किया। छः वर्षों तक यही प्रयत्न करते रहे। उन दिनों के दो बड़े श्रमण आचार्यों के पास जाकर के बहुत गहरे ध्यान सीखे, बहुत गहरे ध्यान। उन दिनों उन्हें सातवां और आठवां ध्यान कहते थे। और वह उन दिनों के ध्यानों की पराकाष्ठा थी। वहां तक कर लिया, फिर भी देखा कि अंतिम अवस्था तो नहीं आयी। तब फिर अपनी ओर से प्रयत्न करना शुरू किया। शरीर को कष्ट देकर के देखा। कायाकष्ट की साधना की लेकिन कुछ नहीं प्राप्त हुआ। पर यों करते-करते-करते अपने अनेक पूर्वजन्मों की पारमी के कारण रास्ता खुल गया, विपश्यना विद्या सामने आ गयी। उसका अभ्यास करते-करते सम्यक सम्बोधि प्राप्त हो गयी।

इसके बाद उन्होंने अपने पांच साथियों को, जब पहली बार धर्म समझाया तब उसे धर्मचक्र-प्रवर्तन कहा। धर्म का चक्र चलाया; संप्रदाय का नहीं, किसी दार्शनिक मान्यता का नहीं। उसे धर्म कहा। धर्म सदा एक होता है; संप्रदाय भिन्न-भिन्न होते हैं, दार्शनिक मान्यताएं भिन्न-भिन्न होती हैं, कर्मकांड भिन्न-भिन्न होते हैं, तीज-त्यौहार भिन्न-भिन्न होते हैं, पर्व-उत्सव भिन्न-भिन्न होते हैं; परंतु धर्म एक ही होता है। बस, उसे जान लिया। थोड़े से शब्दों में समझाया कि मेरी क्या सम्यक सम्बोधि हुई! मैंने ये चार सच्चाइयां जानीं, जो किसी अनार्य को आर्य बना दे –

पहली सच्चाई **पहला आर्यसत्य** – यह दुःख है। दुःख है, यह सच्चाई है। कोई रोगी है तो पहली बात चिकित्सक को जाननी है कि रोग क्या है? क्या रोग है, यही नहीं जानेगा तो उपचार क्या करेगा? यह रोग है, मैंने जान भी लिया कि यह दुःख है। फिर भी पूरी तरह नहीं जाना। दुःख की मोटी-मोटी बातें तो जन्म से ही शुरू हुयीं। रोते हुए जन्मा, दुःख है। बड़ा हुआ तो बीमारी लग गयी, दुःख है। और

बड़ा हुआ, बुढ़ापा आ गया, दुःख है। जीवनभर – यह अनचाही बात हो गयी, वह मनचाही बात नहीं हुई। मनचाही बात होने में यह बाधा आ गयी, दुःखी हो गया। और यह अनचाही, मनचाही; सारे जीवनभर होती रहती है। तो कभी इस बात को लेकर दुःखी, कभी उस बात को लेकर दुःखी। यों करते-करते मृत्यु आती है तो मरने का दुःख। मरणांतक पीड़ा! अरे, कितना दुःख है!

दुःख है, इतना ही नहीं, इसका परिज्ञान करना है। यह ऊपरी-ऊपरी बातों वाला दुःख तो कोई भी जानता है। इसको सम्यक सम्बोधि नहीं कहेंगे। अनुभूति के स्तर पर इस सारे क्षेत्र को जानना है। सारे दुःख का क्षेत्र, इसका परिपूर्ण ज्ञान होना चाहिए, परिज्ञान होना चाहिए। कहीं कोई धोखा न रह जाय। तो दुःख की जो सबसे गहन अवस्था है, वह तो यह कि कितने ही दीर्घायु वाला व्यक्ति क्यों न हो, इस लोक का कि उस लोक का; उसको भी मृत्यु आती ही है। उसका दुःख आता है। और मरने पर बात खत्म नहीं होती। फिर जन्मता है, फिर मृत्यु आती है, फिर जन्म होता है। अरे, यह जन्म-मृत्यु का संसरण चलता ही रहता है। और जब तक यह चलता है तो दुःख के बाहर कैसे हुए? यह सारा क्षेत्र दुःख ही है न!

तो मुझे यह सारा क्षेत्र अनुभूति पर उतारते-उतारते, इसकी अंतिम परिधि तक पहुँच कर, इस क्षेत्र का अतिक्रमण कर लेना है कि जहां दुःख का नामोनिशान नहीं। जहां नया जन्म नहीं, फिर मृत्यु नहीं। जो नित्य है, शाश्वत है, ध्रुव है, एकरस है, अविनाशी है। उसकी कोई कल्पना नहीं। उसकी कोई दार्शनिक मान्यता नहीं। उसका अनुभव हो।

और वह अवस्था ऐसी – इंद्रियातीत अवस्था, शब्दातीत अवस्था, अनिर्वचनीय अवस्था! कोई क्या कहेगा, क्या समझायेगा। अनुभव हो गया, बस! उसका साक्षात्कार हो गया। उसका साक्षात्कार करने के लिए पहले इस सारे क्षेत्र को अनुभूति पर उतारना होगा। दुःख की सारी परधि तक, मृत्युलोक की अनुभूति। और ध्यान करते-करते देवलोकों की अनुभूति हुई। अब कोई यह मान ले कि हम तो देवलोक में आ गये, अब तो अमर हो गये! अनुभूति पर उतारता है तो देखता है कि नहीं, अमर नहीं हो गया, उसमें भी मृत्यु है। आगे जाकर ब्रह्मलोक की अनुभूति हुई – बहुत दीर्घायु! कितने कल्पों तक का जीवन! फिर भी मृत्यु है। अमर अवस्था अभी नहीं आयी; नित्य, शाश्वत, ध्रुव अवस्था नहीं आयी।

उसका भी अतिक्रमण हो जाय तो फिर अविनाशी अवस्था आयी – जो नित्य है, शाश्वत है, ध्रुव है, एकरस है। वह अवस्था आयी तो दुःख के क्षेत्र का परिपूर्ण ज्ञान हुआ। यह दुःख है, पहली बात। इस दुःख का परिपूर्ण ज्ञान होना चाहिए, यह मन में संकल्प हो और इसके लिए तैयारी हो; यह दूसरी बात। और इसका परिपूर्ण ज्ञान कर लिया, यह तीसरी बात।

तो यह जो पहला आर्य सत्य है, वह भी तब पूरा होता है जबकि ये तीन बातें पूरी कर लें – दुःख है, दुःख का पूरा परिज्ञान करना है, दुःख का पूरा परिज्ञान कर लिया। तीनों हो गये।

दूसरा आर्यसत्य – कारण क्या है? अरे, मोटे-मोटे कारण तो बहुत हैं। अनचाही हो गयी, मनचाही नहीं हुई। जो प्रिय लगता है, उसका वियोग हो गया। जो अप्रिय लगता है, उसका संयोग हो गया। कई कारण! वे भी सही हैं। पर वह भासमान सत्य हैं, प्रकट सत्य हैं, प्रतीत्य सत्य है – ऐसा प्रतीत होता है कि यह घटना घट गयी, इसलिए मैं दुःखी हो गया।

परंतु सच्चाई यह है कि कैसी भी घटना घटे; मेरे सही दुःख का कारण मेरे भीतर है, बाहर की घटना में नहीं। तो दुःख का मूल कारण जो भीतर है, उसका उत्खनन करना है, उसको जड़ों से निकाल कर फैंकना है। तब दुःख से छुटकारा होगा। तो उन गहराइयों तक जाना है कि दुःख कैसे उत्पन्न होता है?

बात स्पष्ट हुई कि कामनाओं से, तृष्णाओं से, अभीप्साओं से – यह हो जाय, यह हो जाय; करते-करते नहीं हुआ तो दुःखी हो गया। यह न हो, न हो; करते-करते हो जाय तो दुःखी हो गया। जो प्राप्त हो गया, वह सुरक्षित कैसे रहे? कहीं चला न जाय। वह चला गया तो दुःखी हो गया। दुःख से छुटकारा नहीं। जब तक दुःख का जो कारण है, उसका पूरी तरह से उत्खनन न हो जाय, वह जड़ों से न निकल जाय, तब तक दुःख से छुटकारा नहीं हुआ।

देखते-देखते, सच्चाई को अनुभव पर उतारते-उतारते, बात समझ में आयी – मन में कोई विकार जाग जाय तो उस विकार के साथ दुःख जागता है। विकार और दुःख सहजात हैं, एक साथ उत्पन्न होते हैं। यह हो नहीं सकता कि मन में विकार जागा और दुःख नहीं हुआ; दुःख होगा ही। इस सच्चाई को अनुभूति पर उतार करके अब यह करना है कि विकार जागे ही नहीं। विकार जागा नहीं तो दुःख नहीं। तो इसके भी तीन हिस्से – यह दुःख का कारण है, पहली बात। इस दुःख के कारण का हनन करना है, दूसरी बात। इस दुःख के कारण का हनन कर लिया, तीसरी बात। ये तीनों हो तो दूसरा आर्य सत्य पूर्ण हुआ।

तीसरा आर्यसत्य – सारा लक्ष्य तो यही है न कि दुःख पूर्णतया समाप्त हो जाय, फिर आये ही नहीं। उसे उन दिनों की भाषा में कहा – दुःख निरोध हो गया। समापन हो गया, इसकी जड़ें निकल गयीं। अब दुःख आने वाला नहीं है, आ ही नहीं सकता – दुःख निरोध।

तीसरे आर्यसत्य का पहला अंग – दुःख निरोध। दूसरा अंग – दुःख निरोध करना है; दुःख निरोध होना चाहिए, यह लक्ष्य है। और तीसरा अंग – दुःख निरोध कर लिया। अब दुःख नहीं आ सकता। ये तीनों बातें हुईं तो तीसरा आर्य सत्य संपन्न हुआ।

चौथा आर्यसत्य – यह दुःख निरोध कैसे हो? दुःख निरोध की प्रतिपदा – उसका रास्ता, उसका मार्ग। कोई रास्ता तो होगा न! केवल चाहने से तो कुछ नहीं होता, उसके लिए कोई प्रयत्न करना पड़ता है, कोई परिश्रम करना पड़ता है, पुरुषार्थ करना पड़ता है, पराक्रम करना पड़ता है। कैसे करें? क्या रास्ता है, क्या मार्ग है? ओ! यह रास्ता है। यह रास्ता है तो इस रास्ते पर चलना है। इस रास्ते पर चलना है, यह इसका दूसरा हिस्सा। इस रास्ते पर चल लिये। पूरे रास्ते की यात्रा पूरी कर ली। यह चौथे आर्य सत्य का तीसरा हिस्सा।

यों ये चारों आर्यसत्य तीन-तीन तरह से पूरे होने चाहिए। यों बारह प्रकार से पूरे हो जायँ, तब सम्यक सम्बुद्ध हुआ। और सम्यक सम्बुद्ध ही नहीं, जिस किसी व्यक्ति को दुःख से मुक्त होना है, उस परम मुक्त अवस्था तक पहुँचना है, उसको इन चारों आर्य सत्यों के तीनों अंगों का पूर्णतया अनुभव करना होगा, तभी वह मुक्त होगा।

यह रोग है, यह रोग का कारण है, यह रोग का निवारण है और यह रोग के निवारण का उपाय है। हर समझदार चिकित्सक यही तो काम करता है और यह करना ही चाहिए। कोरी बातों में क्या है? हम इस दार्शनिक मान्यता को मानने वाले, तुम उस दार्शनिक मान्यता को मानने वाले; हमारी ऐसी परंपरा, तुम्हारी ऐसी परंपरा। अरे, होगी भाई! ऐसी हो कि वैसी हो; मुख्य बात तो यह कि रोग है न! और मुख्य बात यह कि उस रोग का कारण जानना है और उसका निवारण करना है; तब न बात बनी। तो और सारी बातों को छिलके मान कर एक ओर कर दिया, सार की बात पकड़ी तो अच्छा वैद्य है। इसीलिए महावैद्य हुए। महाभिषक हुए। **'सल्लकत्तो'** – शल्यकर्ता, सर्जन हुए; महाचिकित्सक हुए।

यह परंपरा सभी अच्छे कुशल वैद्यों पर लागू होती है। सबको यही करना होता है। बड़े प्यार से और बिना किसी भेदभाव के। एक ही लक्ष्य है – रोगी आया है, रोग दूर करना है। और किन्हीं बातों में इसे उलझाना नहीं है। और किन्हीं बातों में स्वयं भी उलझना नहीं है। केवल एक ही लक्ष्य – रोग है और रोग को दूर करना है। बंधन है, बंधन से मुक्त करना है। दुःख है, दुःख का निरोध करना है। बस, तभी कुशल वैद्य है और हर कुशल वैद्य के लिए यही चार कर्म करने होते हैं।

भगवान बुद्ध ने यही किया, यही सिखाया। और किसी अप्रासंगिक बात में न अपने आपको उलझाया और न औरों को उलझाया। अरे बाबा! यह है तो यह है, वह है तो वह है। मूल बात तो यह कि रोगी है और मैं वैद्य हूं। मेरे लिए एक ही लक्ष्य है कि इसका रोग दूर करना है। हर व्यक्ति को विकारों का रोग है। धनी हो कि निर्धन हो, पढ़ा-लिखा हो कि अनपढ़ हो, इस जाति का हो कि उस जाति का हो, इस वर्ण का हो कि उस वर्ण का हो, इस गोत्र का हो कि उस गोत्र का हो, इस देश का हो कि उस देश का हो, इस रूप-रंग का हो कि उस रूप-रंग का हो, इस बोली-भाषा का हो कि उस बोली-भाषा का हो, पुरुष हो कि नारी हो; हर मनुष्य इसी रोग का रोगी है कि नासमझी में विकार जगाता है। भीतर जरा-सी मनचाही अनुभूति हुई कि और चाहिए, और चाहिए! राग जगाने लगा। जरा-सी अनचाही अनुभूति हुई कि नहीं चाहिए, नहीं चाहिए! द्वेष जगाने लगा। मनचाही के लिए राग जगायेगा, अनचाही के लिए द्वेष जगायेगा। ये राग, ये द्वेष; ये राग, ये द्वेष। इन्हीं में अपने चित्त का संतुलन खोयेगा, अपने चित्त की समता खोयेगा, अपने चित्त का सुख खोयेगा, शांति खोयेगा। अरे, यही तो रोग है।

राग से मुक्ति हो जाय, वीतराग हो जाय; द्वेष से मुक्ति हो जाय, वीतद्वेष हो जाय; और यह जो अज्ञान है कि पता ही नहीं चलता कि भीतर ही भीतर क्या हो रहा है? ऊपर-ऊपर की बातें तो खूब समझता है परंतु भीतर की बात नहीं समझता, तो अज्ञान है, मोह है, अविद्या है। उस अविद्या को दूर करे, मोह को दूर करे और सच्चाई को जाने – देख! यह सुखद संवेदना जागी और इसके साथ-साथ मेरे मन में राग जागा तो रोग जागा। यह दुःखद संवेदना जागी और इसके साथ-साथ मेरे मन में द्वेष जागा तो रोग जागा – यह होश जाग रहा है तो मोह अपने आप दूर हो रहा है, वीतमोह हो रहा है।

कितनी ही सुखद अनुभूति क्यों न हो, अनंतकाल तक नहीं रहती। कितनी ही दुःखद अनुभूति क्यों न हो, अनंतकाल तक नहीं रहती। उत्पन्न हुई, देर-सबेर समाप्त हो जाती है। अरे! यह शरीर और चित्त का सारा क्षेत्र अनित्य है, नश्वर है, भंगुर है, परिवर्तनशील है। यह कोरी दार्शनिक बात नहीं, अनुभूति की सच्चाई है। और जब तक हम इस अनित्य, नश्वर, भंगुर; अनित्य, नश्वर, भंगुर के क्षेत्र में भ्रमण कर रहे हैं, तब तक दुःख ही दुःख के क्षेत्र का भ्रमण है। इसके परे कैसे पहुँचे?

इसके परे पहुँचने की विद्या सिखायी जो हर समझदार आदमी और हर परिश्रम करनेवाला आदमी उस रास्ते चल करके दुःखों से मुक्त हो सकता है। यह विपश्यना, भारत की महान विद्या, समय-समय पर जागती है। कोई सम्यक सम्बुद्ध होता है तो फिर जागती है। फिर कुछ समय के बाद नष्ट हो जाती है। फिर कोई सम्यक सम्बुद्ध होता है, फिर जागती है; फिर नष्ट हो जाती है।

सौभाग्य है कि इस सम्यक सम्बुद्ध की विपश्यना विद्या भारत में जागी। ५०० वर्ष होते-होते किसी कारण से नष्ट हो गयी। हम उपकार मानते हैं कि हमारे पड़ोसी देश ने इसे संभालकर रखी और अब बुद्ध के २५०० वर्ष पूरे होने पर यह फिर अपने देश में आयी है। देश के समझदार लोग इसे स्वीकार कर रहे हैं और विश्व में फैल रही है, विश्व के लोग स्वीकार कर रहे हैं। हर समझदार आदमी स्वीकार कर रहा है।

तो इसे समझें और हर चिकित्सक इसका उपयोग करने के लिए पहले स्वयं इसका अभ्यास करे, इसमें पके और फिर देखे। देखेगा कि हर चिकित्सक की चिकित्सा कितनी सफल होने लगी, कितनी मंगलकारी होने लगी, कितनी कल्याणकारी होने लगी!

आयुर्वेद का अपना स्थान है, विपश्यना का अपना स्थान है। लक्ष्य एक ही है। दोनों के संयोग से रोग मुक्त होना है। यह संगोष्ठी ऐतिहासिक है और इसके बहुत अच्छे परिणाम आने वाले हैं, इसकी मुझे पूर्ण आशा है।

मंगल हो, कल्याण हो, भला हो, स्वस्ति हो, मुक्ति हो!

आवश्यक सूचना

१. सभी विपश्यना शिविर आयोजक समितियों से निवेदन है कि आपके केंद्र/अस्थायी केंद्र का भावी शिविर कार्यक्रम क्षेत्रीय/प्रादेशिक आचार्य की अनुमति से समिति/केंद्र के लेटरहेड पर ही यथाशीघ्र भेजें। इस लेटरहेड पर क्षेत्रीय/प्रादेशिक आचार्य का

हस्ताक्षर होना आवश्यक है। वर्ष २००६ के लिए यदि आपने शिविर कार्यक्रम भेज दिया है तो कृपया क्षेत्रीय/प्रादेशिक आचार्य के 'अनुमोदन-पत्र' की एक प्रति धम्मगिरि अवश्य भेज दें।

२. सभी आचार्य एवं शिविर-व्यवस्थापक कृपया अपने क्षेत्र/केंद्र का वार्षिक लेखा-जोखा, फार्म्स आदि यथाशीघ्र भिजवाएं ताकि आगामी वार्षिक सम्मेलन में उन्हें प्रस्तुत किया जा सके।

मंगल मृत्यु

अमेरिका में रहने वाली विपश्यनाचार्या डॉ. (श्रीमती) कमला गांधी ने १७ अक्टूबर को अपने निवास अरिजोना में शांतिपूर्वक अपना शरीर त्याग किया। दिवंगत के प्रति हमारी मंगल कामनाएं।

नये उत्तरदायित्व

आचार्य

Mr. Dirk Taveirne & Mrs. Mieke De Wilde, *Belgium*
To serve Dhamma Pajjota

वरिष्ठ सहायक आचार्य

Mr. Arthur Rosenfeld & Mrs. Ana Teixido, *the Netherlands*

Mr. Robert & Mrs. Sarah Doyle, *U.K.*

Dr. Myo Aung & Daw Khin Than Hmi, *Myanmar*

Dr. U Thein Kyi & Dr. Daw Than Than Htay, *Myanmar*

Ms. Anna Schlink, *Australia*

Ms. Deborah Coy, *USA*

नव नियुक्तियां

सहायक आचार्य

श्रीमती प्रेमा सुरेश सारडा, औरंगाबाद.

बालशिविर शिक्षक

Mr. Ramanadhan A. & Mrs. Shanti Ramanadhan, *U.A.E.*

दोहे धर्म के

दुःख जन्म है, दुख मरण, जरा व्याधि दुख होय।
इस दुखमय संसार में, दुख से बचा न कोय॥
दुःख नाम आसक्ति का, मूल बात यह जान।
अनासक्ति से दुख मिटें, धर्म मूल पहचान॥
धर्म जगे तो सुख जगे, दुःख उखड़ता जाय।
तृष्णा की तड़पन मिटे, तृप्ति सुधा रस पाय॥
धर्म जगे तो सुख जगे, मुक्ति दुखों से होय।
कर्मों के बन्धन कटें, ग्रति विमोचन होय॥
दुखियारों से जग भरा, सुखिया दिखे न कोय।
धर्म जगे तो सुख जगे, दुखिया रहे न कोय॥
मन आकुल व्याकुल रहे, जब जब जगे विकार।
शांति जगाये चित्त में, धर्म गंग की धार॥

केमिटो टेक्नोलॉजीज (प्रा.) लिमिटेड
८, मोहता भवन, ई-मोजेस रोड, वरली, मुंबई-४०० ०१८
फोन: २४९३ ८८९३, फैक्स: २४९३ ६१६६
Email: arun@chemito.net
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

दुक्ख जनम मँह, मरण मँह, जरा ब्याधि दुख होय।
ई दुखमय संसार मँह, सुखियो दिखै न कोय॥
जद जद जग मँह जनमियो, पड्यो काळ रै गाल।
जरा ब्याधि रै दुक्ख स्यूं, रह्यो हाल बेहाल॥
किसो बुढापो आवियो, ल्यायो गहरो सोग।
दुरबळता, असमरथता, साथै ल्यायो रोग॥
ब्याधि बड़ी अणखामणी, कोई ब्याधी होय।
भव ब्याधी सी दुखमयी, दूजी और न कोय॥
चिंता बैरण खोड़ली, ब्यथित करै दिन रैन।
चिता जळावै चित्त मँह, जळै सांति सुख चैन॥
धन आयो अकड़न बढी, करड़ो हुयो कठोर।
धन छूट्यो ब्याकुल हुयो, दुख दोन्यूं ही ओर॥

एक साधक

की मंगल कामनाओं सहित

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक: राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३, दूरभाष : (०२५५३) २४४०८६, २४४०७६.
मुद्रण स्थान : अक्षर चित्र प्रिंटिंग प्रेस, ६९- बी रोड, सातपुर, नाशिक-४२२००७. **बुद्धवर्ष २५४९, कार्तिक पूर्णिमा, १५ नवंबर, २००५**

वार्षिक शुल्क रु. ३०/-,विदेश में US $ 10, **आजीवन शुल्क** रु. ५००/-, " US $ 100. **'विपश्यना' रजि. नं. १९१५६/७१.** Regn. No. AR/NSK-46/2003-05

Licenced to post w**ithout Prepayment of postage** -- Licence number-- **AR/NSK-WP/3**
Posting day- Purnima of Every Month, Posted at **Igatpuri-422403,** Dist. Nashik (M.S.)

If not delivered please return to:-
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२४०३
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
फोन : (०२५५३) २४४०७६, २४४०८६
फैक्स : (०२५५३) २४४१७६
e-mail: info@giri.dhamma.org
Website: www.vri.dhamma.org